Volume-8, No. 2 Aug.-2021, pp. Hin.24-26

श्रीमद्भागवत के दार्शनिक विचार

डॉ. वीरेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
डी.पी.बी.एस. (पी.जी.) कालिज अनूपशहर बुलन्दशहर उ.प्र. भारत
चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उ.प्र. भारत।

सार

प्रस्तुत लेख महर्षि व्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवत् के दार्शनिक विचारों पर आधारित है, महर्षि व्यास 18 पुराणों के रचयिता माने जाते है। श्रीमद्भागवत इन्ही में से एक पुराण है। जो अपनी श्रेष्ठता के कारण श्रीमद्भागवत् महापुराण के रूप में माना जाता है। दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का महासागर श्रीमद्भागवत् एक विशाल आकार का ग्रन्थ है, जो 12 स्कन्धों में विभक्त है। श्रीमद्भागवत् के अनुसार भक्ति ही भगवान् की प्राप्त का एक मात्र उपाय है। भक्ति मार्ग में भी अष्टांगयोग की आवश्यकता बलनी रहती है। विशेषतः आसान तथा ध्यान की श्रीमद्भागवत्, भारतीय वाङःमय का मुकुटमणि है, इसे वेद–महोदधि का अमृत कहें तो अत्स्युक्ति नही होगी, श्रीमद्भागवत्, जीवनदर्शन अर्थात् मानवीय मूल्यों का और उस पर आधारित शिक्षा दर्शन अथात् शैक्षिक मूल्यों का अद्वितीय ग्रन्थ है, श्रीमद् भावगत्, के दार्शनिक पक्ष में तत्वमीमांसा परमसप्ता का स्वरूप (ईश्वर), जीव का स्वरूप (मानव), सृष्टि का स्वरूप (पुरूष+प्रकृति), ज्ञान का स्वरूप, धर्म (जीवन मूल्यों का स्वरूप) एवं समाज का स्वरूप इत्यादि दार्शनिक पक्ष का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द– सत्य का स्वरूप, प्रकृति जगत का स्वरूप, मानव का स्वरूप, आदर्श राष्ट्र, ज्ञान का महत्व, अज्ञान का स्वरूप

01. प्रस्तावना

दर्शन और शिक्षा में साध्य और साधन का सम्बन्ध होने के कारण दोनों का साथ–साथ अध्ययन किया जाना आवश्यक है। दर्शन जीवन मूल्यों का प्रतिपादन करता है। शिक्षा उन्हें उद्देश्यों का रूप प्रदान करके मानव जीवन का अंग बनाती है। वर्तमानकाल में दर्शन का क्षेत्र बड़ा संकुचित हो गया है। अब उनके अर्न्तगत् मुख्यतया तीन बिषयों का ही अध्ययन किया जाता है : (1) तत्त्वमीमांसा, (2) ज्ञानमीमांसा और (3) मूल्यमीमांसा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के इस अध्याय में श्रीमद्भागवत् इन्हीं तीन पक्षों से सम्बनिधत विचारों का विवेचन किया जा रहा है। ये विचार पॉच भागों में विभक्त हैं– (1) श्रीमद्भागवत् में सत्ता का स्वरूप, (2) श्रीमद्भावगत् में जीव का स्वरूप, (3) श्रीमद्भागवत् में जगत् का स्वरूप, (4) श्रीमद्भाागवत् में ज्ञान का स्वरूप, और (5) श्रीमद्भागवत् में मूल्यों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का स्वरूप । विवेचन केवल तथ्यों की अभिव्यक्ति तक ही सीमित नही है। अतः प्रस्तुत लेख में इस प्रश्न पर भी विचार किया जायेगा कि स्वतन्त्र भारत में प्रचलित विदेशी शिक्षा प्रणाली के पुनर्निर्माण की दृष्टि से श्रीमद्भागवत् के परमसत्ता, जीव, जगत्, ज्ञान और मूल्य–सम्बन्धी विचार कितने व्यावहारिक एवं प्रासंगिक हैं?

02. सत्त का स्वरूप

सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्माण्ड की भूमि को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है। और इसके दस अंगुल ऊपर भी हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड में व्याप्त होते हुये वे दर्शन इससे परे भी है। उस परमात्मा के मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियॉ, और चरण आदि कर्मेन्द्रियॉ हजारों है–असख्य है। यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, परमात्मा का ही स्वरूप है। भूत ओर भविष्य जगत् दोनों परमात्मा ही है। इतना ही नही वह परमात्मा मुक्ति का स्वामी है, तो भी ये जो अन्त में उत्पन्न होने वाले जीव हैं, उन सब का भी शासन सबको नियम के अन्दर रखने वाला वह परमात्मा ही है। उस सत्ता का स्वरूप, श्रीमद्भागवत के अनुसार किया जाता है–

श्लोक

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्।।
2/1/24

अर्थ– प्रस्तुत श्लोक में राजा परीक्षित के ब्रह्मा के विषय में पूँछने पर श्री शुकदेव जी ने कहा कि यह कार्यरूप सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा

सब–का–सब जिसमें दीख पड़ता हैं, वही भगवान का स्थूल–से स्थूल और विराट् शरीर है।

03. प्रकृति

जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कारण–कार्य रूप हैं तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मों का आश्रय हैं, उस प्रधान नाम तत्त्व को ही प्रकृति कहते हैं। यहॉ पर उसी प्रकृति का वर्णन किया जा रहा हैं–

श्लोक

अनादिरात्मा पुरूषों निर्गुणः प्रकृतेः परः।
प्रत्यग्धामा स्वयं जयोतिर्विश्वं येन सर्मान्वतम्।। 3/26/3

अर्थ–प्रस्तुत श्लोक में देवहूति से भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति ओर पुरूष के सम्बन्ध के विषय में कहते है कि यह सारा जगत् जिससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है वह आत्मा ही पुरूष है। वह अनादि, निर्गुण प्रकृति से पर, अन्तःकरण से स्फुरित होने वाला और स्वयं प्रकाश है।

04. जगत का स्वरूप

यह जो दृष्यमान जगत् है इसका निमित्त कारण ओर उदापान कारण ब्रह्मा है। उसी ने इस सृष्टि की रचना की है। अपनी अव्यक्त आदिशक्ति में विकृति उत्पन्न करके प्रकृति तथा प्रकति में विकार उत्पन्न करके सृष्टि की रचना करना ब्रह्मा का कार्य हैं, हम यहॉ श्रीमद्भागवताकार के मतानुसार सृष्टि (जगत्) वर्णन कर रहे हैं।

श्लोक

यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ।
यत्संस्थं यत्परं यश्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः।। 2/5/2

अर्थ– प्रस्तुत श्लोक में नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा जी से सृष्टि के विषय में पूछा– पिताजी इस संसार का क्या लक्षण है? इसका आधार क्या हैं? इसका निर्माण किसने किया है? इसका प्रलय किसमें होता हैं? यह किसके अधीन हैं? ओर वास्तव में यह है क्या वस्तु ? आप इसका तत्त्व बताइये।

05. मानव का रूवरूप

'बड़े भाग मानुष तन पावा'

लख चौरासी योनि में भ्रमण करने के बाद जब पुण्यों का उदय होता है तब कहीं मानव देह प्राप्त होती है। मानव शरीर सम्पूर्ण योनियों में श्रेष्ठ माना जाता है। यही एक तन ऐसा है जिसमें जीवन के रहते यहॉ के लिये कमाया, जोडा जा सकता है। तथा मृत्यु के बाद के लिये भी कमाया जा सकता है। मानव शरीर के रहते हुए ही अपने आत्मकल्याण की भावना, अच्छे बुरे का ज्ञान, ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। यहॉ हम श्रीमद्भागवत् के अनुसार मानव के गुण–कर्मो की समीक्षा कर रहे है।

श्लोक

अथ यो गृहयेधीयान्धर्मा नेवावसन् गृहे ।
काम अर्थ च धर्मान् स्वान् दोग्धिभूयः पिपर्तितान् ।।3/32/1

अर्थ– प्रस्तुत श्लोक में कपिल देव जी कहते है कि जो पुरूष घर में रहकर सकाम भाव से गृहस्थ के धर्मो का पालन करता है ओर उनके फल स्वरूप अर्थ एवं काम का उपभोग करके फिर उन्हीं का अनुष्ठान करता रहता है वह तरह–तरह की कामनाओं से मोहित रहने के कारण भगवद्धर्मो से विमुख हो जाता है और यज्ञों द्वारा श्रद्धापूर्वक देवता तथा पितरों की ही आराधना करता रहता है।

06. आदर्श राष्ट्र

जिस राजा के राज्य में प्रजा प्रत्येक दृष्टि से सुखी रहती है। उसे आदर्श राष्ट्र कहते है। भारतीय संस्कृति में राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत्– समझता है। उसके सुख–दुःख का भार वहन करता है वही आदर्श राजा होता है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में –

बरषत हरषत लोग सब, करषत लखैन कोइ।
तुलसी प्रजा–सुभाग तें, भूप भानु सो होइ ।।

श्लोक

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्रस्यन्ते साध्व्यसाधुमि।
तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गति् ।।1/17/10

अर्थ–प्रस्तुत श्लोक में सूत जी सौनकजी से अयोग्यराजा का वर्णन कर रहे हैं– सूत जी कहते हैं कि जिस राजा के राज में दुष्टों के उपद्रव से सारी प्रजा त्रस्त रहती है उस मतवाले राजा की कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य ओर परलोक नष्ट हो जाते हैं।

07. ज्ञान का स्वरूप

मानव जीवन का लक्ष्य है भगवत् प्राप्ति। वैष्णव धर्म के अनुसार ज्ञान, कर्म, उपासना के द्वारा अभीष्ट लक्ष्य तक पहुॅचा जा सकता है। ज्ञानी लोग तो ज्ञान मार्ग को ही ब्रह्मप्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन मानते है। ज्ञानी के लिये कोई कर्तव्य ना होने पर भी वह जो कर्म करता है, केवल लोगों के दिखलाने के लिये नही करता । मन में कर्म का कोई महत्व ना हो और केवल ऊपर से दिखलाने भर के लिये किया जाय, वह तो एक प्रकार का दम्भ है। ज्ञानी में दम्भ नही रह सकता। यहॉ श्रीमद्भागवत् के अनसार ज्ञान के स्वरूप का वर्णन कियां जा रहा है।

श्लोक

एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम्।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ।।11/3/20

अर्थ– प्रस्तुत श्लोक में ज्ञान के द्वारा माया को वश में करने के विषय में बताया गया है कि जो मनुष्य माया से पार पाना चाहता है उसे यह भी समझ लेना चाहिये कि मरने के बाद प्राप्त होने वाले

लोक–परलोक ऐसे ही नाशवान हैं, क्योंकि इस लोक की वस्तुओं के समान वे भी कुछ सीमित कर्मो के सीमित फलमात्र है। वहॉ भी पृथ्वी के छोटे–छोटे राजाओं के समान बराबर वाले से होड अथवा लाग डॉट रहती है। अधिक ऐश्वर्य और सुखवालों के प्रति छिद्रान्वेषण तथा ईर्ष्या–द्वेष का भाव रहता है। कम सुख और ऐश्वर्य वालों के प्रति घृणा रहती है एवं कर्मो का फल पूरा हो जाने पर वहॉ से पतन तो होता ही है उसका नाश निश्चित है। नाश काक भय वहॉ भी नहीं छूट पाता ।

08. अज्ञान का स्वरूप

लख चौरासी योनि में भ्रमण करने के बाद जब पुण्यों का उदय होता है तब कहीं मानव देह प्राप्त होती है। मानव शरीर सम्पूर्ण योनियों में श्रेष्ठ माना जाता है। जब प्राणी जन्म लेता है तभी से अज्ञानान्धकार उसे घेर लेता है। तुलसीदास के शब्दों में भूमिपरत् या डामर पानी। जिमि जींवहि माया लपटानी।।'' जन्मते ही उसे मैं, मेरा तू, मेरा, यह अज्ञान उसके विवेक को ढक लेता है। जीवन भर वह इसी भ्रम में घूमता रहता है। यहॉ हम श्रीमद्भागवत् के अनुसार 'अज्ञान' पर प्रकाश डालेगें।

श्लोक

तस्यैतस्य जनोनूनंनायं वेदोरूविक्रमम् ।
काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव धनावलिः।।3/30/1

श्लोकार्थ– प्रस्तुत श्लोक में श्री कपिलदेव जी कहते है कि जिस प्रकार वायु के द्वारा उडाया जाने वाला मेघ समूह उसके बल को नही जानते उसी प्रकार यह जीव भी बलदान काल की प्रेरणा से भिन्न–भिन्न अवस्थाओं तथा योनियों में भ्रमण करता रहता है किन्तु उसके प्रबल पराक्रम को नही जानता । यथा जीव सुख की अभिलाषा से जिस–जिस वस्तु की अभिलाषा से जिस–जिस वस्तु को बडे कष्ट से प्राप्त करता है।

सन्दर्भ–

01. वेद व्यास, श्रीमदभागवत्, सुधा–सागर, गीता प्रेस, गोरखपुर।
02. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजूकेशन : प्रकाशन, रामप्रसाद एण्ड सन्स हॉस्पीटल रोड, बागरा।
03. श्री अरविन्द, भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविन्द आरम, पाण्डिचेरी 1988
04. मुखर्जी, राधाकुमुद, एन्सिएन्ट इण्डियन एजूकेशन, मैकमिलन, लन्दन 1947
05. वेदान्तसार (भूमिका) ' सम्पाइक डॉ0 शिवसागर त्रिपाठी प्रकाशन– ज्ञान प्रकाशन, मेरठ।
06. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायेंः प्रकाशन, विनोद पुस्तक मन्दिर, रांगेय राघव मार्ग, आगरा।
07. वाचस्पति गैरोला, वैदिक साहित्य और संस्कृति, चोखम्भा संस्कृति प्रतिष्ठान, दिल्ली।
08. आचार्य बलदेव उपाध्याय, पुराण–विमर्श, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1987